THE HINDU

Date: 18-03-26

Nothing at all

The Centre must negotiate in good faith with Ladakhi leadership

Editorial

Activist Sonam Wangchuk's release on March 14 ended a months-long legal and political standoff between his allies and Ladakh's leadership on one hand and the Centre on the other. Detaining him under the National Security Act 1980, the Centre alleged that he was the "chief provocateur" of the September 2025 violent clashes in Leh that left four dead, and dubbed his presence in the region a catalyst for an "Arab Spring-like" mobilisation to force its hand on Ladakh's constitutional status. The Centre also argued that given Ladakh's borders with China and Pakistan, continued "instigation" by a high-profile figure such as Wangchuk threatened territorial stability. About six months later, the Ministry of Home Affairs modified its order, intending to create an environment of "peace, stability, and mutual trust" and resume formal talks with the Leh Apex Body (LAB) and the Kargil Democratic Alliance (KDA). But even as a judicial commission was still investigating the September violence, Wangchuk's legal team and his wife Gitanjali Angmo had successfully undermined the government's case. Foremost, the alleged evidence of incitement was a translation of a short speech padded with pages of "aspersions" — a legally dubious pattern seen in the Elgar Parishad, Delhi liquor scam, and G.N. Saibaba cases. His lawyers also pointed to Wangchuk's social media posts condemning the unrest that day.

The Supreme Court had also expressed serious concerns over Wangchuk's health in Jodhpur jail. His release came just three days before the Court's final hearing on the matter, letting the Ministry to avoid a potentially embarrassing ruling that could have deemed the detention arbitrary. But while Wangchuk's release has defused the immediate tension, the political situation remains fundamentally unresolved. Two days on, Leh saw massive rallies for the first time since September 2025, while Kargil observed a shutdown, with local leaders saying that the agitation for constitutional safeguards would continue. Talks between Ladakh bodies and the Ministry have however been inconclusive, with LAB and the KDA reiterating their demands for statehood and Sixth Schedule status — already recommended by the National Commission for Scheduled Tribes and promised in the BJP's 2020 election manifesto. Crucially, other activists, including Deldan Namgyal and Smanla Dorjey, remain in detention. In effect, what Wangchuk's detention was meant to serve is unclear, beyond allowing the Centre to brandish its heavy hand, worsening his health, and stalling negotiations. Unless the Centre can negotiate in good faith with the Ladakhi leadership and provide concrete timelines, the people of Ladakh will not get their due.

Date: 18-03-26

यूरोपियन देशों की दोटूक से युद्ध - विस्तार टल रहा है

संपादकीय

होर्मुज मार्ग खोलने के लिए अपनी सेना भेजने की ट्रम्प की यूरोपीय देशों, चीन और रूस से अपील फिलहाल बेअसर रही। फ्रांस, यूके और जर्मनी ने फिलहाल अपने-अपने तरीके से सैनिक बेड़े भेजने यानी युद्ध में कूदने से मना कर दिया है, जबकि स्पेन और डेनमार्क ने दोटूक जवाब दे दिया है। पिछले चार दिनों से चीन का एक विशेष दूत ईरान और अरब देशों के बीच लगातार घूम रहा है। देखने में यह समझौता प्रयास कहा जा रहा है, लेकिन रक्षा विशेषज्ञों का मानना है कि ईरान का युद्ध में इतने लम्बे समय तक टिके रहना बगैर रूसी और चीनी सामरिक खुफिया मदद के संभव नहीं हो सकता। चीनी सक्रियता का परोक्ष संदेश यह भी है कि अगर यूरोपीय देश युद्ध में ईरान के खिलाफ आते हैं तो चीन और रूस भी चुप नहीं बैठेंगे। यही कारण है कि यूरोप के देश अमेरिका का साथ देने से बच रहे हैं। ट्रम्प का व्यक्तिगत व्यवहार भी इन देशों के साथ धमकी भरा ही रहा है। ग्रीनलैंड को लेकर केवल डेनमार्क ही नहीं, अन्य देश भी अमेरिका के इरादों के प्रति सशंकित हैं। यूरोप जानता है कि नाटो का अस्तित्व रूस और चीन की ओर से खतरे के कारण है। यह भी सच है कि नाटो अमेरिकी वित्तीय और सामरिक मदद से ही चलता है, जिससे यूरोपीय देशों का रक्षा मद में कम खर्च होता है। लेकिन कोई भी देश अकारण किन्हीं दो-तीन देशों की ऐसी लड़ाई में नहीं कूदना चाहेगा, जिसके विश्व युद्ध बनने का खतरा हो । यही कारण है कि ईयू होर्मुज को खुलवाने के लिए वार्ता का रास्ता चुनना चाहता है।

Date: 18-03-26

क्या हमारी रसोई को बिजली से चलाने का समय अब आ गया है?

डॉ. चन्द्रकान्त लहारिया, (जाने माने चिकित्सक)

भारत में रसोई को अकसर घर का दिल कहा जाता है। लेकिन इसके पीछे एक असहज सच भी छिपा है- हमारी रसोई अमूमन घर के सबसे प्रदूषित स्थानों में से एक होती है। आज जब पश्चिम एशिया के संघर्षों और तेल-गैस की अनिश्चित आपूर्ति के कारण वैश्विक ऊर्जा बाजार अस्थिर है, तब भारत को पुनर्विचार करना होगा कि वह कैसे खाना पकाता है। भारतीय रसोई को चरणबद्ध तरीके से बिजली आधारित बनाने की दिशा में दीर्घकालिक योजना पर अब गंभीरता से विचार आवश्यक है।

दशकों से खाना पकाने से होने वाला इनडोर वायु प्रदूषण चुपचाप करोड़ों लोगों के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाता आ रहा है। यह समस्या विशेष रूप से ग्रामीण भारत और गरीब शहरी परिवारों में अधिक गंभीर है। अध्ययनों से पता चला है कि बायोमास ईंधन से चलने वाली रसोई में प्रदूषण का स्तर सुरक्षित सीमा से कई गुना अधिक होता है।

शहरी मध्यमवर्गीय घरों में भी स्थिति पूरी तरह सुरक्षित नहीं है, जहां घर के भीतर वायु गुणवत्ता कई बार बाहर की हवा से पांच से दस गुना खराब पाई गई है। भारतीय घरों में खराब हवा की दोहरी समस्या है- एक ओर ईंधन का प्रकार और दूसरी ओर खाना पकाने के तरीके। तेज आंच पर पकाना, तेल और मसालों से उठने वाला धुआं मिलकर इसे प्रदूषण का केंद्र बना देते हैं।

शोध बताते हैं कि खाना पकाने से उत्पन्न प्रदूषण का संबंध दमा, फेफड़ों की क्रॉनिक बीमारी, हृदय रोग, मोतियाबिंद, त्वचा और आंखों की समस्याओं तथा समय से पहले मृत्यु से है। महिलाएं, जो रसोई में अधिक समय बिताती हैं, और छोटे बच्चे, जो अकसर मांओं के पास रहते हैं, इससे सबसे अधिक प्रभावित होते हैं।

भारत ने इस दिशा में कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। एलपीजी के विस्तार से कई घरों में बायोमास पर निर्भरता कम हुई है। इससे महिलाओं को राहत मिली और धुएं में कमी आई। लेकिन एलपीजी अंतिम समाधान नहीं है। यह अभी भी जीवाश्म ईंधन है, जिसकी कीमत और उपलब्धता वैश्विक स्थितियों पर निर्भर करती है।

ऐसे में बिजली आधारित रसोई एक अधिक टिकाऊ और भरोसेमंद विकल्प के रूप में सामने आती है। यह सही है कि अभी भारत सरकार और अधिकांश परिवार बड़े पैमाने पर इलेक्ट्रिक कुकिंग के लिए पूरी तरह तैयार नहीं हैं, लेकिन इस विचार को नीति और सार्वजनिक चर्चा में स्थान देना जरूरी है। किसी भी बड़े परिवर्तन को जमीन पर लागू होने में समय लगता है।

आर्थिक दृष्टि से भी यह बदलाव सार्थक है। इलेक्ट्रिक कुकिंग एलपीजी की तुलना में अधिक एनर्जी-सैवी होती है और इसमें ऊर्जा का बड़ा हिस्सा सीधे बर्तन तक पहुंचता है। जैसे-जैसे भारत सौर और पवन ऊर्जा का विस्तार कर रहा है, बिजली की लागत अधिक स्थिर और प्रतिस्पर्धी हो सकती है। यह ऊर्जा सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण दोनों लक्ष्यों के अनुरूप है।

हालांकि कई चुनौतियां भी हैं। देश के कई हिस्सों में बिजली की आपूर्ति अभी भी पूरी तरह विश्वसनीय नहीं है। केवल कनेक्शन होना पर्याप्त नहीं, निरंतर और पर्याप्त बिजली भी जरूरी है। इसके अलावा, इंडक्शन चूल्हे और अन्य उपकरणों की शुरुआती लागत गरीब परिवारों के लिए बाधा बन सकती है।

भारतीय भोजन में तेज आंच, लंबे समय तक पकाना और बड़े बर्तनों का उपयोग शामिल होता है। कई लोगों को लगता है इलेक्ट्रिक चूल्हे पर वही स्वाद नहीं मिलेगा। इन धारणाओं को बदलने के लिए जागरूकता और भरोसा जरूरी है।

इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए स्पष्ट नीतिगत रोडमैप भी आवश्यक होगा। लक्षित सब्सिडी और आसान वित्तीय विकल्पों से गरीब परिवारों को मदद मिल सकती है। रूफटॉप सोलर जैसी व्यवस्था भी इलेक्ट्रिक कुकिंग को समर्थन दे सकती है।

दैनिक जागरण

Date: 18-03-26

राजनितिक नौकर शाही

संपादकीय

विधानसभा चुनाव वाले राज्यों में पुलिस एवं प्रशासनिक अधिकारियों के बड़े पैमाने पर स्थानांतरण अथवा उन्हें उनके वर्तमान पदों से हटाए जाने के चुनाव आयोग के फैसले से यही पता चलता है कि सरकारों और नौकरशाही में किस तरह मिलीभगत हो जाती है।

चूंकि भाजपा शासित असम में भी अधिकारियों को हटाया गया है, इसलिए इस आरोप के लिए कोई स्थान नहीं बचता कि चुनाव आयोग एकतरफा कार्रवाई कर रहा है, पर ऐसे आरोप सामने आएंगे ही। बीते दिनों तृणमूल कांग्रेस के सांसदों ने बंगाल में बड़े पैमाने पर अधिकारियों के तबादलों को लेकर अपना गुस्सा संसद में निकाला।

इसकी कहीं कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इन तबादलों का भारत सरकार से कोई लेना-देना नहीं, लेकिन विपक्ष की चुनाव आयोग पर पक्षपाती होने के आरोप लगाने की आदत हो गई है। वास्तव में इसी आदत के चलते तृणमूल कांग्रेस की अगुआई में विपक्ष की ओर से मुख्य चुनाव आयुक्त को हटाने की पहल की गई है।

संकीर्ण राजनीति प्रेरित इस पहल से यह सच्चाई बदलने वाली नहीं है कि बंगाल उन राज्यों में अग्रणी है, जहां अनेक पुलिस और प्रशासनिक अधिकारी तृणमूल कांग्रेस के कार्यकर्ता के तौर पर काम करते दिखते रहे हैं। इसके कई उदाहरण भी सामने आ चुके हैं। वास्तव में इसीलिए चुनाव आयोग को वहां के मुख्य सचिव, गृह सचिव, डीजीपी के साथ दर्जनों पुलिस एवं प्रशासनिक अधिकारी हटाने पड़े हैं।

लोकसभा चुनाव के समय भी बंगाल में कई अधिकारियों को हटाया गया था। इनमें बंगाल के तत्कालीन डीजीपी भी थे। चुनाव बाद ममता बनर्जी ने उन्हें फिर से पुलिस प्रमुख बना दिया था। अभी हाल में उन्होंने उन्हें राज्यसभा भेजा। ऐसे मामले नए नहीं हैं। कई बार तो नौकरशाह इस्तीफा देकर या फिर वीआरएस लेकर सत्तारूढ़ दल के प्रत्याशी बनकर चुनाव मैदान में उतर जाते हैं। इस तरह के प्रसंग यही बताते हैं कि नौकरशाही का किस तरह राजनीतिकरण हो गया है।

नौकरशाही के राजनीतिकरण के लिए किसी दल या सरकार विशेष को ही जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता, लेकिन इतना तो है ही कुछ राज्यों में यह हद से ज्यादा बढ़ गया है। नौकरशाही का राजनीतिकरण अथवा सत्तारूढ़ राजनीतिक दलों की ओर से नौकरशाहों के समक्ष अपने दल के सदस्य के तौर पर काम करने की परिस्थितियां पैदा करने से प्रशासनिक तंत्र का अवमूल्यन ही हो रहा है।

यह ठीक नहीं कि जिन अधिकारियों से यह अपेक्षित होता है कि वे नियम-कानूनों के प्रति निष्ठावान रहें, वे जनता की सेवा करने के स्थान पर दल विशेष की सेवा करते दिखते हैं। जब ऐसा होता है तो शासन-प्रशासन की ओर से जनता के हितों की उपेक्षा ही होती है। नौकरशाही के राजनीतिकरण के लिए जितने जिम्मेदार नौकरशाह हैं, उतने ही राजनीतिक दल भी।

Date: 18-03-26

अमेरिका को अराजक बनाते ट्रंप

निकोलस क्रिस्टोफ, (लेखक 'द न्यूयॉर्क टाइम्स' के स्तंभकार हैं)

कल्पना कीजिए कि ईरान अपने एजेंट मेक्सिको में उतार दे और वहां टेक्सास सीमा से वे अमेरिकी सैन्य ठिकानों पर एक मिसाइल दाग दें। भले ही उनकी ऐसी कोई मंशा न हो, लेकिन इस दौरान लापरवाही के चलते ऐसे हमले में कोई अमेरिकी स्कूल ध्वस्त हो जाए, जिसमें 175 जान गंवानी पड़ें। इसके बाद वे तेल डिपो को जलाने लग जाएं और लोगों को रासायनिक वर्षा का शिकार बनाएं।

ऐसी स्थितियों में स्कूल, क्लिनिक और सामान्य जनजीवन ठप पड़ जाए और फिर भी ईरानी नेता धमकाएं कि अमेरिकी को इस हद तक तबाह कर देंगे कि वह कभी फिर से उठ खड़ा न हो पाए। निश्चित ही ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति डोनल्ड ट्रंप के साथ-साथ हम सभी लोग निर्दोष नागरिकों पर हुए इस घृणित हमले को लेकर अपना आक्रोश प्रकट करेंगे और ऐसा करना बिल्कुल सही भी होगा।

युद्ध का परिदृश्य हमेशा त्रासद होता है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान इस त्रासदी ने और विकराल रूप ले लिया। तब अमेरिका ने अपनी मारक क्षमताएं दिखाईं कि महज कुछ ही घंटों के दौरान वह कैसे लाखों लोगों को काल के गाल में धकेल सकता है। युद्ध के बाद अपने दामन पर पड़े छींटों को साफ करने की मंशा से आत्ममंथन करते हुए अमेरिका ने ऐसे वैश्विक प्रयासों को लेकर पहल की, जिसमें युद्ध की विकरालता न बढ़े और खासतौर से आम नागरिकों को नुकसान न पहुंचे।

तब जिनेवा कन्वेंशन जैसे प्रोटोकॉल के अतिरिक्त ऐसे अन्य अनेक उपाय किए गए कि युद्ध के दौरान पेयजल स्रोतों जैसे ढांचों को कतई निशाना न बनाया जाए, ताकि नागरिकों की परेशानी न बढ़े। हालांकि, सभ्यता-मानवता को पोषित करने वाली ऐसी परंपरा भी हाल के वर्षों में कई बार तार-तार हुई है। यूक्रेन पर हमले के बाद रूस ने नागरिकों के लिए बिजली की आपूर्ति तक काट दी। इससे हाड़ कंपाने वाली सर्दियां यूक्रेन के लोगों के लिए और बेरहम साबित होने लगी।

संयुक्त राष्ट्र आयोग के अनुसार इजरायल ने गाजा में फलस्तीन के लोगों को दाने-दाने के लिए तरसा दिया। उसने स्वास्थ्य केंद्रों से लेकर शैक्षणिक संस्थानों तक पर भीषण बमबारी की और बच्चों को भी निशाना बनाने से गुरेज नहीं किया। संयुक्त अरब अमीरात ने सूडान में ऐसी मिलीशिया को शह दी, जिसने सामूहिक दुष्कर्मों और नरसंहार को अंजाम दिया। वहां पहले से ही मुश्किलें झेल रहे लोगों पर आफत की एक नई बारिश हो गई।

जहां तक गाजा की बात है तो वहां अमेरिका द्वारा आपूर्ति किए जा रहे हथियारों से ही तबाही मचाई गई और वाशिंगटन ने अपने सहयोगी की निंदा करने से भी परहेज ही किया। इसके बावजूद उसने आधे-अधूरे मन से ही सही, लेकिन वहां युद्ध के दौरान भी सामान्य तौर-तरीकों को कायम रखने की वकालत जारी रखी। जबकि ईरान के मामले में मुझे इस बात का डर है कि वह अपने इस रुख से भी पलट जाए तो कोई हैरत की बात नहीं।

इस युद्ध में उन मूल्यों को ताक पर रखा जा सकता है, जिसके साथ सभी सभ्य देश खुद को बंधा हुआ देखते थे। वे मूल्य जो हमारी साझा मानवता को सहेजने के लिए बहुत जरूरी समझे गए हैं। ईरान पर हमला अंतरराष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन करता हुआ ही प्रतीत होता है, क्योंकि न तो संयुक्त राष्ट्र ने इसकी अनुमति दी है और न ही आत्मरक्षा के लिए इसकी कोई आवश्यकता थी।

ईरान का आरोप है कि उसके उस संयंत्र को भी निशाना बनाया गया है, जिससे 30 गांवों को पेयजल की आपूर्ति होती थी। हालांकि अमेरिका और इजरायल ने इस आरोप को खारिज किया है। वहीं, ईरानी रेड क्रेसेंट सोसायटी का यह भी कहना है कि देश में 14 मेडिकल कालेज, 65 स्कूलों और 17,000 घर हमलों के शिकार बने हैं। वर्तमान परिदृश्य को लेकर यूनिसेफ का कहना है कि भिन्न-भिन्न देशों में छिड़ी लड़ाई के चलते अब तक 1,100 से अधिक बच्चे मारे गए हैं।

मैं इस बात को लेकर और अधिक चिंतित हूं कि अगर ट्रंप की हताशा बढ़ती गई और पहले से तय लक्ष्यों पर निशाने से उनके मंसूबे पूरे नहीं होते तो वे सैन्य प्रतिष्ठानों के साथ-साथ इलेक्ट्रिक ग्रिड, हाईवे और पुलों जैसे नागरिक सुविधाओं से जुड़े ढांचों पर भी हमला कर सकते हैं ताकि ईरान को भारी नुकसान पहुंचाया जा सके।

इससे नागरिकों की मुश्किलें बढ़ेंगी और असंतोष भड़क सकता है। राष्ट्रपति और उनके आसपास जमा मंडली ने ऐसे इरादे जाहिर भी किए हैं। ट्रंप ने प्रेस से बाकायदा यह कहा है, 'अगर उन्होंने कोई दुस्साहस दिखाया तो उन्हें ऐसा सबक सिखाया जाएगा कि उससे उबरने के लिए दुनिया में उनकी कोई मदद नहीं कर पाएगा।'

पूरी दुनिया यह देख रही है। जहां कुछ देशों ने ईरान पर हमले को सही बताया है तो उसका विरोध करने वाले भी कम नहीं हैं। स्पेन के प्रधानमंत्री पेड्रो सांचेज ने ईरान पर अमेरिकी-इजरायली हमले को बेपरवाही से भरा और अवैध बताया है। स्विस रक्षा मंत्री ने कहा कि अमेरिकी हमला अंतरराष्ट्रीय कानूनों का उल्लंघन है। फ्रांस के पूर्व प्रधानमंत्री डोमिनिक डी विलेपिन ने अमेरिकी युद्ध को 'अवैध, अनैतिक, अप्रभावी एवं घातक' बताते हुए उस पर अंकुश की अपील की है। कुछ लोगों का तो यहां तक कि मानना है कि ट्रंप अमेरिका को दिशाहीन एवं अराजक देश बनाने पर तुले हैं।

ट्रंप के छेड़े इस युद्ध का विरोध करने के तमाम और भी व्यावहारिक कारण हैं। इससे ईरान की मुल्लाशाही का आधार दरकने के बजाय और मजबूत ही हुआ है। मोजतबा खामेनेई की ताजपोशी के रूप में हम एक ऐसे नेता को स्थापित करने का माध्यम बन गए जो अपने पिता की तुलना में कहीं अधिक कट्टर है। होर्मुज जलमार्ग के बाधित होने से तेल-गैस की कीमतों के चढ़ने के साथ ही उर्वरकों की आपूर्ति पर संशय के बादल मंडराने लगे हैं।

जहां तक जानमाल की क्षति का सवाल है तो युद्ध के बाद अमेरिका और ईरान दोनों जगह हालात और खराब होने की भरी-पूरी आशंका बढ़ गई है। इस युद्ध को बाद में इसके लिए भी याद किया जाएगा कि युद्ध की भयावहता और दुष्प्रभावों को घटाने के लिए एक समय जो प्रयास किए गए, वे कालांतर में कैसे मटियामेट हुए थे। ऐसा होता है तो मानवता ही उसकी सबसे बड़ी भुक्तभोगी होगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 18-03-26

एडटेक की परीक्षा

संपादकीय

कौशल विकास कंपनी अपग्रेड द्वारा एडटेक प्लेटफॉर्म अनएकेडमी को पूरी तरह स्टॉक डील में खरीदने के प्रस्ताव ने उस कारोबार के लिए उम्मीद पैदा की है जो लॉकडाउन के बाद स्कूलों के खुलने से प्रभावित होने के कारण लड़खड़ा रहा है। वर्ष 2022 से चल रही फंडिंग की समस्या अभी तक सुलझने के कोई संकेत नहीं दिखा रही है।

ग्राहकों और भागीदारों द्वारा संदिग्ध कॉरपोरेट गवर्नेंस और असामान्य दस्तूर अपनाने के आरोपों के बीच भारत के पहले हाई-प्रोफाइल एडटेक यूनिकॉर्न बैजूस के पतन ने इस क्षेत्र के आकर्षण को बहुत हद तक धूमिल कर दिया। महामारी के बाद अनएकेडमी और नोएडा स्थित वेदांतु जैसे प्लेटफॉर्मों की संघर्षपूर्ण स्थिति ने भी इस क्षेत्र की स्थिति को और खराब कर दिया है। ये कभी इस क्षेत्र में अग्रणी थे।

ताजा सौदा अपग्रेड की तरफ से दो महीने में दूसरी पेशकश है। जनवरी में चल रही बातचीत मूल्यांकन को लेकर मतभेद के कारण विफल रही थी। बताया जाता है कि उद्यमी और फिल्म निर्माता रॉनी स्क्रूवाला द्वारा सह-संस्थापित अपग्रेड ने 30 करोड़ डॉलर का मूल्यांकन प्रस्तावित किया था जो अनएकेडमी के निवेशकों द्वारा चाहे जा रहे 2.25 अरब डॉलर के मूल्यांकन से काफी कम था। वर्ष 2021 में इसका मूल्यांकन 3.4 अरब डॉलर के साथ उच्चतम स्तर पर था।

2024 में अनएकेडमी और कोटा में तैयारी कराने वाली प्रमुख संस्था एलेन करियर इंस्टीट्यूट के बीच चल रही बातचीत भी इन्हीं वजहों से विफल हो गई थी। इस सौदे के संभावित पुनर्जीवन (फिलहाल केवल एक टर्म-शीट पर हस्ताक्षर हुए हैं) से यह संकेत नहीं मिलना चाहिए कि इस क्षेत्र को नई जान मिल रही है। आगे के सौदे 2021 और 2022 जैसी सुर्खियां बटोरने वाली ऊंची मूल्यांकन दरों पर होने की संभावना नहीं है।

निवेशकों के बीच नजरिया यह है कि नया निवेश जुटाने के लिए प्रवर्तकों को बड़े पैमाने पर कटौती करनी पड़ेगी (जिसका संकेत अपग्रेड-अनएकेडमी सौदे से मिलता है)। 2024 में एडटेक फंडिंग में हल्की बढ़ोतरी ने उम्मीदें जगाईं लेकिन 2025 में सौदों की संख्या घटकर 31 रह गई, जो 2024 में 48 थी और जो 2021 के उछाल वर्ष में 172 तथा 2022 में 95 की तुलना में बहुत कम है। यह एक दशक में सबसे कम है। फंडिंग भी 2024 के 57.2 करोड़ डॉलर से घटकर 2025 में 24 करोड़ डॉलर रह गई। यह 2021 के 4.78 अरब डॉलर और 2022 के 2.44 अरब डॉलर से तेज गिरावट है।

नोएडा मुख्यालय वाली फिजिक्सवाला सूचीबद्ध होने वाली पहली एडटेक कंपनी बनी। उसका शेयर बाजार प्रदर्शन इस दृष्टिकोण को दर्शाता है। नवंबर 2025 में 145 रुपये पर सूचीबद्ध होने के बाद, इसका शेयर अब लगभग 80-86 रुपये पर ठहरा हुआ है। कई तरह से एडटेक क्षेत्र खराब रणनीति सोच का भी उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह गलती उद्यमियों और निजी इक्विटी/वेंचर कैपिटल निवेशक, दोनों की ओर से नजर आती है। अधिकांश एडटेक प्लेटफॉर्म महामारी के वर्षों में तेजी से बढ़े और के-12 (किंडरगार्टन से कक्षा 12 तक) क्षेत्र में प्रवेश कर गए, क्योंकि लॉकडाउन के दौरान पारंपरिक स्कूल बंद थे और ये एडटेक संस्थान निवेशकों से लगातार बढ़ते हुए मूल्यांकन का लाभ उठा रहे थे।

आश्चर्य नहीं कि स्कूलों के फिर से खुलने के बाद वे प्रासंगिक बने रहने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। टेस्ट तैयारी और कोचिंग व्यवसाय में लगे प्लेटफॉर्म अनुभवी पारंपरिक संस्थानों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाए। बैजूस और अनएकेडमी ने हाइब्रिड ऑनलाइन/ऑफलाइन मॉडल अपनाने की कोशिश में भारी नकदी खर्च की, आक्रामक रूप से स्टार्टअप्स का अधिग्रहण किया और इतनी तेजी से विस्तार किया कि गुणवत्ता नियंत्रण प्रभावित हुआ। परिणामस्वरूप लाभ में कमी आई और छंटनी हुई।

निवेशकों की प्राथमिकताएं भी बदलती रही हैं। महामारी के बाद के दौर में कौशल उन्नयन, उच्च शिक्षा और पेशेवर पढ़ाई को एडटेक निवेश के लिए अधिक लाभकारी विकल्प माना गया। अब आर्टिफिशल इंटेलिजेंस के आगमन के साथ निवेशक फिर से के-12 शिक्षा की ओर रुख कर रहे हैं, जहां प्लेटफॉर्म की स्कूल छात्रों को व्यक्तिगत शिक्षा देने की क्षमता एक प्रमुख विभेदक तत्व बनकर उभरेगी। लेकिन यहां भी फंडिंग में बेहतरी अभी नजर आनी है।